मूल्य रु. ५/-

प्रथम आवृत्ति सन् १९८५. २,००० प्रतियाँ

प्रकाशक : सवनम् मीडिया एंटरप्राइस
१९/६६०, चेम्बूर कॉलोनी, मुम्बई-४०० ०७४.

मुद्रक : साईकृपा प्रिन्टर्स, ओम निवास, गणेश नगर, चेम्बूर, मुम्बई-४०० ०७४.

शिव रहस्य

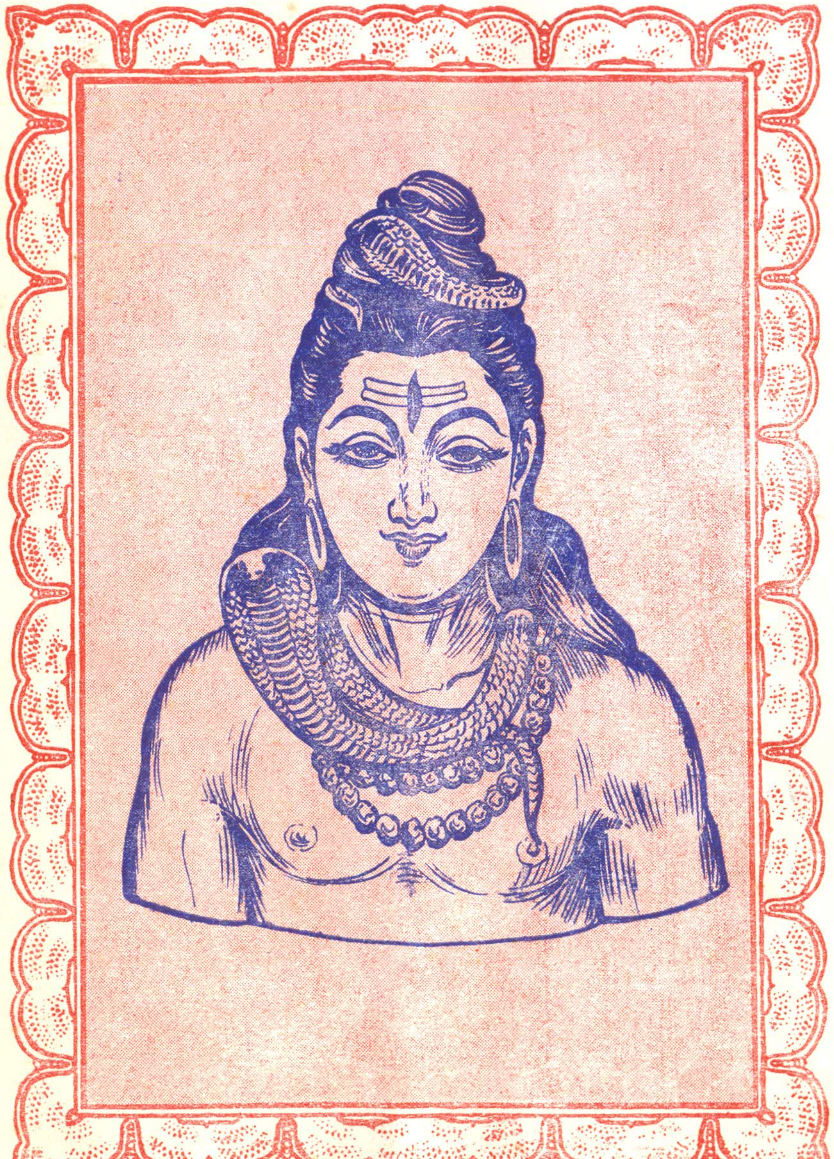

लेखक : ज्येष्ठ वर्मन्

: लेखक के दो शब्द :

हिन्दुओं के देवि-देवताओं को प्रायः दो दृष्टिकोणों से देखा जाता है। एक पौराणिक, पूर्ण अंधविश्वास का, दूसरा निरा तर्क का। पहला दृष्टिकोण से यद्यपि ये देवि-देवतायें और इन को माननेवालों की संस्कृति बहुत बदनाम हुई और उपहास का केन्द्र बनी, निरा तार्किक दृष्टिकोण रखनेवालों ने भी इनके साथ कोई न्याय नहीं किया है। क्योंकि केवल भावुकता से अथवा केवल तर्क से कुछ सूक्ष्म बातें कभी कभी पकड में नहीं आती। इसलिये भावुक और तार्किकों के बीच में कभी कभी विवाद बढ जाता है और कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। यहाँ आवश्यकता इस बात की होती है कि भावना तर्क का सहारा लेकर चले और तर्क भावना को समझने का प्रयत्न करे। यह नीति, विशेष रुप से, कला और साहित्य के क्षेत्र में उपयुक्त सिद्ध होती है। हिन्दुओं के देवि-देवताओं में असाधारण काव्य और उत्तम साहित्य का सुंदर संगम देखा जा सकता है। जैसे काव्य में ध्वनि वैसे कला में संकेत का स्थान है। यदि ध्वनि श्रवणपथ को पार करती है, संकेत दृष्टि पथ से आगे निकलती है। इसलिये साधारण बुद्धि के लोग इन दोनों बातों को ग्रहण नहीं कर पाते। इसलिये इनका भेद उत्तरोत्तर गूढ बनता गया। इसलिये एक ओर से इनका दुरुपयोग हुआ और दूसरी ओर से इनकी उपेक्षा भी की गई। इन दोनों बातों से केवल हानि ही सिद्ध हुई है। इन देवि-देवताओं के निर्माण करनेवाले बडे कुशल और मेधावी थे; जिस बात को एक साधारण व्यक्ति हजारों शब्दों में भी स्पष्ट नहीं कर सकता है उसे इन मनीषियों ने सूत्रात्मक और सांकेतिक भाषा में बडी आकर्षक रीति से थोडे में ही समझा दिया है। ज्ञान और शिक्षा के प्रचार में ये सुन्दर तरीके बुद्धिमान और मन्दमति, दोनों को भाने लगे। इसी कारण ये बडे लोकप्रिय होगये।

विद्या की यह विशिष्ट परम्परा लुप्त होने के कारण आज लोगों को इनका यथार्थ ज्ञान नहीं है। जिस समय उनको इन देवि-देवताओं का यथार्थ ज्ञान कराया जाता है, ये मुग्ध हो जाते हैं, आबाल-वृद्ध, विद्वान और अविद्वान, तार्किक और भावुक, इन सब को बडा आनन्द आता है। और उन सबके आनन्द में मुझे भी आनन्द मिलता है। इसीलिये मैं अन्य सामाजिक और और व्यावसायिक कार्यों में अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी, इस कार्य के लिये भी थोडा थोडा समय निकालता हूँ। जैसे 'श्री गणेश का रहस्य' का लोगों ने बडे गौरव के साथ स्वागत किया, वैसे ही इस 'शिव रहस्य' का भी स्वागत होगा ऐसा मेरा विश्वास है और मुझे आशा है कि मैं अन्य देवि-देवताओं का रहस्य भी इसी प्रकार से जनता की सेवा में प्रस्तुत कर सकूँगा। धन्यवाद।

ज्येष्ठ वर्मन्

: शिव-रहस्य :

लेखक : ज्येष्ठ वर्मन्

वैदिक संस्कृति सारे विश्व में एक सर्वश्रेष्ठ और प्राचीनतम संस्कृति है। यही सारी संस्कृतियों की जननी है। इसका मूल वेद है। इसकी रक्षा और उन्नति करनेवाले आर्य लोग थे। ये संसार के श्रेष्ठ पुरुष थे। इन्होंने ही वैदिक संस्कृति को विश्व भर में फैलाया था। उनका मूल स्थान भारतवर्ष था। वे हमारे पूर्वज थे। पृथ्वी की समस्त मानवजाति उनकी ही संतान है। विश्व की समस्त अनार्य जातियाँ भी उन्हीं लोगों से उत्पन्न हुई है। आर्यों में से ही कुछ लोग पतित होने के कारण अनार्य कहलाये। प्रारम्भ में इनको आर्यों से अलग कर दिया गया। इस प्रकार अलग होकर उन्होंने एक अलग संस्कृति को जन्म दिया। इस अनार्य संस्कृति की कालक्रमेण अनेक शाखायें हुई। फिर एक समय ऐसा भी आया कि आर्य और अनार्य, दोनों का मेल-मिलाप भी हुआ। इससे एक-दूसरे की संस्कृति परस्पर प्रभावित हुई। इसके फलस्वरूप एक मिश्रित संस्कृति का उदय हुआ।

सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर, आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व काल तक अर्थात् महाभारत युद्ध-काल तक, वैदिक संस्कृति की परम्परा उज्वल और अक्षुण्ण रही। इसी परम्परा में पलकर साधारण मनुष्य भी देवता बन गये। उन्होंने विश्वकल्याण कार्य में अपना योगदान दिया। इसी संस्कृति के आधार पर उन्होंने पुरुषार्थ चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध किया। जो लोग इस परम्परा से हट गये, अथवा जिन्होंने भी इसको तोडने का प्रयास किया उनकी वही दुर्दशा हुई जो किसी की, अपनेही पाँव में कुल्हाडी मारने पर होती है। रावण, कंसादि अनेक व्यक्तियों के दृष्टान्त, हमारे प्राचीन इतिहास में इस बात के लिये प्रमाण के रूप मे मिलते हैं। अर्थात्, महाभारत काल तक इस धरती पर अनार्य संस्कृति पनप नहीं सकी थी।

महाभारत युद्ध से वैदिक संस्कृति को एक बहुत बडा आघात पहुँचा। इस युद्ध से वैदिक परम्परा के संरक्षक, विद्वान-ब्राह्मणों और क्षत्रिय कुलों का विनाश हुआ। "कुल क्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः। धर्मेनष्टे कुलं कृत्स्नम् अधर्माभिभवत्युत॥" (भगवद्गीता १।४०) इस महान् कुलक्षय के परिणामस्वरूप सनातन वैदिक-कुलधर्म, वर्णाश्रम-व्यवस्था, वेदाध्ययन् यज्ञानुष्ठान् इत्यादि की परम्परा लुप्त होती चली गई एवं वैदिक अर्थात् आर्य संस्कृति पतन की दिशा में बढती गई. परमपिता परमेश्वर की इस रमणीय सृष्टि में, हमारे पूर्वज जिन कल्याणकारी लक्षणों को देखा करते थे उसमें अब विनाशकारी लक्षण दिखाई देने लगे। जिस मंगलमय वातावरण में वे विचरते थे,

सबके लिये कल्याणकारी होने से 'शिव' कहलाता है. 'ईश' धातु से ईश्वर शब्द बना है। ईश धातु का अर्थ है ऐश्वर्य अथवा सामर्थ्य. ऐश्वर्यवान् अथवा समर्थ होने के कारण परमात्मा 'ईश्वर' कहलाता है। 'यो महतां ईश्वराणां ईश्वर: महेश्वर:'. अर्थात् सब ऐश्वर्यवानों और समर्थों में जो सब से महान् है वह 'महेश्वर' है। परमात्मा सब ऐश्वर्यवानों और समर्थों में सबसे महान् हैं। इसलिये उसका नाम 'महेश्वर' है। 'य ईश्वरेषु समर्थेषु परम: श्रेष्ठ: स परमेश्वर:'। अर्थात् जो ईश्वरों अथवा समर्थों में समर्थ, जिसके तुल्य कोई भी न हो वह परमेश्वर है. 'यो महतां देव: स महादेव:'. अर्थात् जो महान देवों का देव, विद्वानों का भी विद्वान् है, वह महादेव हैं। 'य:शङ्कल्याणं सुखं करोति स शङ्कर:'। अर्थात् जो सबका कल्याण करता है, अथवा जो सबको सुख देता है, वह शङ्कर है। यो रोदयति अन्यायकारिणो जनान् स रुद्र:'। अर्थात् जो दुष्ट और अन्यायकारियों को रुलाता है वह 'रुद्र' हैं। सभी भूतों अर्थात् पृथिव्यादि पंच महाभूतों अथवा सभी पशुओं या प्राणियों का जो नाथ पति हैं वही 'भूतनाथ' व 'पशुपति' हैं। ये सारे लक्षण परमात्मा में विद्यमान होने के कारण, ये सारे नाम उसीके विशेषण मात्र है। इसी प्रकार ब्रम्हा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, यम आदि शब्द भी परमेश्वर के साथ सार्थक होते हैं। वह परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, निराकार, निर्विकार, अजर, अमर, नित्य, पवित्रादि लक्षणवाला हैं। ऐसे ही समझकर उसकी उपासना की जा सक्ती हैं, वही उपासना के योग्य है, और यही तर्क संमत भी है। उसको अन्यथा समझकर उपासना करना सत्य का गला घोंटना मात्र है।

वैदिक भाषा की यही विशेषता हैं कि यहाँ प्रयुक्त शब्द सामान्यत: यौगिक अर्थवाले होते हैं। अर्थात्, ये धात्वर्थबोधक होते हैं। अत: एक धातु के अनेक अर्थ होने से, एकही शब्द के अनेक अर्थ हो जाया करते हैं और कभी कभी एक ही अर्थ को अनेक धातुओं द्वारा प्रकट किया जा सकता हैं। लेकिन लौकिक भाषाओ में प्राय: ऐसी बातें नहीं देखी जाती। इनमें शब्दों के वे ही अर्थग्रहण किये जाते हैं जो रूढी में चल पडे हैं। जैसे 'गौ' शब्द के, वेदों में पृथ्वी, किरण, वाक् इत्यादि अनेक अर्थ होते हैं, लेकिन लौकिक भाषा में 'गौ' शब्द का अर्थ 'गाय' तक ही सीमित है। इसी प्रकार, शिव, महादेव रुद्र, पशुपति, भूतनाथ इत्यादि शब्द यद्यपि लौकिक भाषा में किसी व्यक्ति विशेष के नाम हो सकते है, और परमेश्वर के अर्थ में भी ग्रहण किये जाते है, तथापि, इन शब्दों के कई अन्य अर्थ भी है। यथा सूर्य, अग्नि, विद्वान, राजा इत्यादि।

सूर्य शिव है

सूर्य से हमारा कितना कल्याण होता है, उसका यहाँ वर्णन करना आवश्यक भी नहीं है, सम्भव भी नहीं है। वह न केवल प्रकाश देता है, अपितु वनस्पति, औषधि, अन्न, प्राण, ऊर्जादि का भी वही स्रोत है। इसलिये कवि मयूर ने सूर्य की स्तुति करते हुए कहा है कि सूर्य किरणों का उदय सबके लिये शिव अर्थात् कल्याणकारी हो। उसने सूर्यशतक में लिखा है कि —

अस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिरनिशानश्वर: कर्तुमीशो

विश्वं वेश्मेव दीप: प्रतिहततिमिरं य: प्रदेशस्थितोऽपि ॥

दिक्कालापेक्षयासौ त्रिभुवनमटतस्तिग्मभानोर्नवाख्यां

यात: शातक्रतव्यां दिशिदिशतु शिवं सोऽर्चिषामुद्गमो व: ॥

इसका भावार्थ यह है कि, सूर्य वैसे ही आकाश में किसी एक स्थान पर से प्रकाशित होता है और अन्धकार को अपने किरणों के प्रकाश से नष्ट करता है जैसे कोई दीपक घरके किसी कोने पर से जलता हुआ सारे घर को आलोकित करता है। वह नित्य नया दिखनेवाला और अनेक कार्यकरनेवाला है। उसके किरणों का उदय सबके लिये कल्याणकारी हो। इस प्रकार सूर्य का शिवत्व लोकप्रसिद्ध है। इसी कारण से वह शङ्कर अर्थात् कल्याण करनेवाला व सुख का दाता है।

सूर्य ही महादेव, रुद्र, महायम और अग्नि है

भगवान शिव को लोग, महादेव, रुद्र, महायम, अग्नि इत्यादि नामों से भी जानते हैं। ये सारे विशेषण, वेदों में भगवान सूर्य के लिये भी प्रयुक्त हैं। यथा —

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महोदेवाय तदृतं सपर्यत।

दूरेदृशे देवजातस्य केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥

(ऋग्वेद १०। ३७।१)

सोऽर्यमा स वरुण:स रुद्र:स महादेव:।

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृत: ॥

सोऽग्नि: स उ सूर्य: स उ एव महायम:।

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृत: ॥

(अथर्ववेद १३। ४।४, ५)

इन मंत्रों में महादेव, रुद्र, महायम, इत्यादि नामों से सूर्य का वर्णन किया गया है। यह आकाश में अपनें किरणों के जाल को बिछातें हुए आता हैं।

पृथिव्यादि आठ वसु, चैत्रादि बारह महीनें - जिनको आदित्य कहते हैं, दस प्राण और ग्यारहवां जीवात्मा - जिनको ग्यारह रुद्र कहतें है, क्योंकि जब ये शरीर से निकल जाते हैं, तब सब रोते हैं, इन्द्र अर्थात् बिजली, प्रजापति अर्थात् यज्ञ, ये सारे मिलकर तैंतीस देव माने जाते हैं। इन सबों में सबसे महान् देव सूर्य हैं। इसलियें उसको 'महादेव' कहते हैं। देव शब्द के विद्वान्, दानी, प्रकाशक, आकाशस्थानीय पदार्थ इत्यादि अनेक अर्थ होते हैं।

प्रलयकाल में सूर्य भयंकर अग्नि का रूप धारण करता है और ग्रीष्म काल में उसके रुद्र स्वरूप को सब लोग जानते ही हैं। ध्रुव प्रदेशों में उसके अभाव के कारण भी लोग रोते हैं। सूर्य के उदय होने पर निशाचर रोते हैं। उसके अस्त होने पर प्रकृति माता रोती है, कमल मुरझाते हैं। इत्यादि कारणों से सूर्य रुद्र कहलाता हैं।

प्रकाशादि देनेवालों और जगत को संयत्रित करनेंवालों में सूर्य महान हैं। इसलिये उसको महायम भी कहते हैं। अपनी ऊर्जा के व्दारा जगत को गतिप्रदान करने के कारण उसको अर्यमा भी कहते हैं और अग्नि स्वरूप होने के कारण उसको अग्नि भी कहते हैं।

सूर्य भी नीलकण्ठ है

भगवान् शिव को नीलकण्ठ भी कहते हैं। इस सम्बन्ध में एक वेद मंत्र इस प्रकार हैं-

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः दिवं रुद्राः उपश्रिताः॥

(यजुर्वेद १६। ५६)

इस मंत्र के भाष्य में उव्वट ने लिखा है कि 'नीलग्रीवाः द्युस्थाना उच्यते'। इसका तात्पर्य है कि नीलग्रीव अर्थात् नीलकण्ठ, आकाश और आकाशस्थ सूर्य को कहते हैं।

नील वर्ण आकाश का धोतक है ही। किन्तु कण्ठ भी आकाश का प्रतीक है। क्योंकि, आकाश का गुण शब्द है और कण्ठ का लक्षण भी शब्द है। अतःनीलकण्ठ शिव 'सूर्य' के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

सूर्य ही गंगाधर है

शिव को गंगाधर अर्थात् गंगा नदी को धारण करनेवाला बताया जाता है। गंगा शब्द का अर्थ है गतिशील। नीचे की ओर जिसकी गति है उसको नदी कहते हैं। इसलिये

सूर्य के किरणों को भी नदियाँ कहते हैं। वेदों में गंगा आदि नदियों का उल्लेख हैं। ये भारतवर्ष की सरिताओं के नाम नहीं हैं। ये आकाशीय नदियाँ अर्थात् सूर्य की किरणें हैं। यह एक अलग बात है कि भारतवर्ष की नदियों के नाम भी वैदिक शब्दों के आधार पर रखे गये हैं।

'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतद्रि स्तोमं सचता परुष्णि आ'

(ऋग्वेद १०। ७५। ५)

इस मंत्र में अनेक नदियों के नाम हैं। इन सबको धारण करनेवाला सूर्य है। 'गंगाधर' शब्द में 'गंगा' शब्द को उपलक्षणार्थ में ग्रहण करना चाहिये। इससे, एक नाम से अन्य नाम भी ग्रहण किये जाते हैं। इसलिये 'गंगाधर' शब्द का अर्थ भी सूर्य होता है।

प्रातः सूर्योदय के समय में और सायंकाल सूर्यास्त के समय, धरती को रंग देनेवाली जो सुनहरी किरणें हैं उन्ही का नाम गंगा प्रतीत होता है। क्योंकि इन किरणों में जीवन देने की शक्ति, पावकता, शीतलतादि गुण तो विद्यमान है ही। इसलिये ऋषियों ने संध्यावन्दन के लिये सूर्योदय और सूर्यास्त का समय निश्चित किया है। (देखिये, मनुस्मृति अध्याय २, श्लोक १०१, १०२) सूर्य की ये किरणें हमारे शरीर के अन्दर, प्राणवायु के साथ, नाडियों के माध्यम से प्रवेश करती हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी के साथ सूर्य का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। योगीजन गंगा को इडा, यमुना को पिंगला, और सरस्वती को सुषुम्ना कहते हैं। ये सारे नाम गुणवाचक शब्द हैं। प्राणायाम के द्वारा इन किरणों से लाभ की बात कही गई है। स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वाधिक लाभ गंगा से होता है। मन के ऊपर भी इसका बहुत अच्छा प्रभाव पडता है।

वास्तव में गंगास्नान संध्या-वन्दना ही है। क्योंकि इसमे भौतिक दृष्टि से उपासक सूर्य की किरण रूपी पवित्र गंगा में स्नान कर लेता है। और अध्यात्मिक दृष्टि से वह कल्याणकारी शिव अर्थात् परमात्मा के चिन्तन में मग्न हो जाता हैं। इस प्रकार मनुष्य सन्ध्योपासना रूपी गंगास्नान से पवित्र हो जाते हैं।

सूर्य ही जटाधारी और मूँछवाला है

शिव को जटाधारी अथवा केशी भी कहते हैं। उसकी मूँछ और कहीं कहीं दाढी का भी चित्रण मिलता है। ये सब श्लेष अथवा रूपकालंकार की बातें हैं। यजुर्वेद के एक मंत्र में सूर्य को कपर्दि अर्थात् जटाधारी कहा गया हैं। (देखिये, अध्याय १६, मंत्र २९) जैमिनीय ब्राह्मण में सूर्य के केशादि का विवरण दिया गया हैं। यथा —

तस्य योऽर्वाञ्चो रश्मयस्तानि श्मश्रूणि। य ऊर्ध्वास्ते केशाः॥

(जै. ब्रा. २। ६१)

अर्थात्, सूर्य की जो सामनेवाली किरणें है वे उसकी मूंछे हैं और ऊपर की ओर जानेवाली किरण उसके केश हैं। आचार्य शौनक ने लिखा है कि —

असौ तु रश्मिभिः केशी तेनैनामाहु केशिनः (बृहद्देवता १। ९४)

अथातु, किरणों के कारण सूर्य को केशी कहते हैं। किरणों को केश क्यों कहते है? 'केशी केशाः रश्मयस्तैस्तद्वान् भवति। काशानाद्वा प्रकाशनाद्वा केशीदं ज्योतिरुच्यते' (निरुक्त १२। २५)। अर्थात् रश्मियों को ही केश कहते हैं। केशवाला ही केशी है। रश्मियों को केश क्यों कहते हैं? क्योंकि, केश शब्द का अर्थ प्रकाशक है। इसलिये सूर्य का केशी, जटाधारी अथवा कपर्दि इत्यादि नामों से वर्णन करते हैं।

सूर्य ही हर है

आचार्य यास्क ने लिखा है कि 'ज्योतिर्हर उच्यते' (निरुक्त ४। १९)। अर्थात् ज्योति अथवा प्रकाश को हर कहते हैं। क्योंकि वह अंधकार को हरता है। फिर यजुर्वेद भी कहता है कि 'सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः' (अध्याय ३, मंत्र ९)। अर्थात् सूर्य को ज्योति कहते हैं। इसलिये सूर्य का ही एक अन्य नाम 'हर' है। 'हर हर महादेव' कहकर हम 'सूर्य' का ही स्मरण करते हैं।

सूर्य नटराज भी है

नटराज शिव भी सूर्य ही है। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि सूर्य के अन्दर निरन्तर एक भारी स्पन्दन होता रहता है। जैसे सागर की लहरें नाचती हैं वैसे ही सूर्य की रश्मियाँ भी नाचती हैं। रश्मियों की गति लहरों की तरह ही होती हैं। नटराज शिव की हजारों ज्वालायें, अथवा उसके हजारों हाथ सूर्य की किरणें ही हैं। 'इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः (ऋग्वेद ८। ९२। ३) इस मंत्र में इन्द्र अर्थात् सूर्य के नर्तन का उल्लेख है तथा 'सुपर्णा वाचमक्रतोपद्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः' (अथर्ववेद ६। ४९। ३) इस मंत्र में उसकी किरणों की नाच का वर्णन है।

शिव का वस्त्र

भगवान शिव का वस्त्र कृष्णाजिन है। जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है कि—

अहोरात्र एव कृष्णाजिनस्य रूपम्।
अहरेव शुक्लस्य रूपं रात्रिः कृष्णस्य॥ (जै. ब्रा २। ६२)

अर्थात्, कृष्ण मृग की छाल दिन-रात का प्रतीक है। उसमें जो सफेद दाग हैं वे दिन और काले दाग रात के द्योतक हैं। तात्पर्य यह हुआ कि दिन और रात सूर्य के वस्त्र हैं।

कहीं कहीं शिव को गजचर्मामम्बर अर्थात् हाथी की खाल का वस्त्र पहना हुआ बताया गया है। क्योंकि आकाश में बादल हाथी की बडी खाल जैसे दिखते हैं। इनसे सूर्य कभी कभी ढक जाता है। इसलिये इनको सूर्य का वस्त्र माना गया है। इसी कारण से शिव को 'कृत्तिवास' अर्थात् चर्म का वस्त्र धारण करनेवाला भी कहते हैं और कहीं कहीं शिव को दिगम्बर भी कहा गया है। इसका अर्थ है कि चारों दिशायें ही सूर्यके वस्त्र हैं। यहाँ भी आलंकारिक भाषा का प्रयोग है।

शिव के वाहन, ध्वज, भूषण और डमरु

आकाश में मेघ नाना रूप धारण करते हैं। ये बडे आकर्षक होने से कवियों की कल्पना को जागृत करते हैं। अतःकिसीने इनको भगवान् शिव के वाहन् के रूप मे देखा, और किसी ने ध्वज अथवा झंडियों के रूप में देखा, फिर किसी को ये शिव के अलंकारों अथवा आभूषणों के रूप में दिखाई दिये, तथा अन्य किसी ने इनको देखकर मधुर निनाद सुनानेवाले डमरू की कल्पना की। इसलिये, शिव को वृषभवाहन्, वृषभध्वज, नागभूषण, डमरू बजाने-वाला इत्यादि नाम दिये गये। वृषभ शब्द का अर्थ 'बरसानेवाला' होता है। वह पानी बरसानेवाला मेघ है। सूर्य मेघों के ऊपर ही तो रहता है। इसलिये मेघ उसका वाहन माना गया। लोक में वृषभ का अर्थ बेल होता है। इसलिये सांकेतिक भाषा में बेल उसकी सवारी मानी गई। फिर क्योंकि ये मेघ ही आकाश में झंडों की तरह उड़ रहे हैं, कवियों ने इनको शिव अर्थात् सूर्य के ध्वज माना और सूर्य को वृषभ ध्वज कहा।

वेदों में मेघों को अहि भी कहते हैं। अहि शब्द का अर्थ सर्प भी होता है। धात्वर्थ की दृष्टि से सर्प शब्द का अर्थ सर्पणशील अथवा गतिशील होता है। मेघ सर्पणशील अथवा गतिशील है। इसलिये ये सर्प हैं। सर्प को लोक में नाग भी कहते हैं। इसलिये ये शिव अर्थात सूर्य के आभूषण माने गये। इसी आधारपर शिव की गले में सर्पों की माला की कल्पना की गई। इसी कारण शिव को नागभूषण भी कहते हैं। इन मेघों को ही इनकी मधुर गर्जना के कारण, शिव का डमरू कहा गया है। इस प्रकार शिव अर्थात् सूर्य के वर्णन में रूपक और श्लेषालंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है।

शिव का स्थान

भगवान् शिव के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह पर्वतों के मध्य मे कहीं सोता है या रहता है। इसलिये उसको 'गिरिश' कहते हैं। 'नमःकपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशाय च' (यजुर्वेद १६।२९) – इस मंत्र में कपर्दी, व्युप्तकेश, सहस्त्राक्ष, शतधन्वन् तथा गिरिश, शब्दों से सूर्य का ही वर्णन किया गया है। गिरि, पर्वतादि

शब्द वेदों में मेघार्थक भी हैं। सूर्य का स्थान मेघों के ऊपर ही तो है। इसलिये वह 'गिरिश' कहलाता है।

शिव को कैलासपति भी कहते हैं। 'कः' शब्द का अर्थ सुख व स्वर्ग है। जहाँ जीव सुखपूर्वक विलसित होते हैं वही कैलास अथात् आकाश व स्वर्ग है। इसलिये आकाश व स्वर्ग का स्वामी सूर्य ही है।

शिव की पत्नी

पृथ्वी सूर्य की पत्नी मानी गई है। वह अनवरत सूर्य की परिक्रमा अथवा सेवा करती है। इसलिये वह पतिव्रता या सती है।

य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्योऽ ददद्वशाम्।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथ्वी सहदेवता ॥ (अथर्ववेद १२।४।२३)

इस मंत्र में पृथ्वी के लिये दुर्गा शब्द विशेषण के रूप में आया है। 'दुर्गा' शब्द का अर्थ है जिसका अतिक्रमण करना कठिन हो। अतः शिव की पत्नी दुर्गादेवी हमारी पृथ्वी है जो हम सबकी माता है। इसकी रक्षा सूर्य करता है। 'भूमिं पृथ्वीमिन्द्रगुप्ताम्' (ऋग्वेद १२।१।११)। इस मंत्र में भूमि अथवा पृथ्वी का रक्षक इन्द्र अर्थात् सूर्य बताया गया है। सूर्य को वेदों में भयंकर मृग अथवा सिंह भी कहा गया है। सूर्य पृथ्वी को धारण किया हुआ है। इसी बात को, सांकेतिक भाषा में, समझाते हुए दुर्गा को सिंह के ऊपर आसीन दिखाया गया है।

गौरी भी शिव की पत्नी का नाम है। यह शब्द वर्णवाचक है। यह गौरी, आकाश में, मेघों की गोद में से चमकती हुई बिजली है। यह पर्वत अर्थात् मेघों से उत्पन्न होती है, इसलिये इसका नाम पार्वती है।

सूर्य के जितने विशेषण हैं उतने ही विशेषण उसकी शक्तियों के भी हैं। यथा सूर्य को काल या महाकाल कहते हैं, इसलिये उसकी शक्ति का नाम काली या महाकाली है। सूर्य के शिव, शंकर, शंभु, भव, शर्व आदि नाम हैं। इसलिये उसकी पत्नी के नाम भी शिवा अथवा शिवानी, शंकरी, शांभवी, भवानी, शर्वाणि आदि हैं।

शिव के बेटे

शिव के दो बेटे हैं। एक का नाम कुमार कार्तिकेय और दूसरे का नाम गणपति है। सूर्य अग्नि है। इसलिये अग्नि के बेटे भी अग्नि ही होंगे। वैदिक साहित्य में गार्हपत्य अग्नि को प्रजापति अथवा गणपति कहा गया है। इसकी विशेष चर्चा मैंने स्वलिखित पुस्तक 'श्री गणेश का रहस्य' में की है। कृत्तिका नक्षत्र में किये जानेवाले विशेष यज्ञ की अग्नि को

आहवनीय अग्नि कहते हैं। कृत्तिका में छः नक्षत्र हैं। इसलिये कार्तिकेय को षण्मुख अथवा षाण्मातुर भी कहते हैं। 'स्कन्दि गति शोषणयोः इस धातु से स्कन्द शब्द बनता है। गति और शोषण अग्नि के गुण हैं। इसलिये स्कन्द शब्द का अर्थ भी अग्नि है। कुमार, सेनानि आदि नाम भी अग्नि के हैं। सूर्य और याज्ञिक अग्नियों का पिता और पुत्र का सम्बन्ध माना गया है। शिव के बेटों का यही रहस्य है।

शिव के कुछ अन्य वर्णन

शिव के सारे वर्णन और उसकी सारी कहानियों का रहस्य यहा बताना कठिन है। क्योंकि वह एक बडा ग्रंथ बन जायेगा। इसलिये केवल कुछ मुख्य बातों की ही मैंने यहाँ चर्चा की है जिससे, विद्वानों को शिव के रहस्यों को समझने, समझाने में सुविधा हो।

त्रिमूर्तियों में ब्रह्मा का रंग लाल, विष्णु का रंग नीला और शिव का रंग धवल है। यह धवल वर्ण सूर्य की शुभ्र-कान्ति के सिवा और कुछ भी नहीं है। शिव का विष पीना, सूर्य का जल पीना है। क्यों कि निघंटु में जल के लिये एक सौ नाम दिये गये हैं, उनमें से एक है 'विषम्'। सूर्य 'विष्' अथात् जल को ऊपर खींचते रहता है और अपनी गले में अर्थात् आकाश में उसको धारण किये रहता है।

शिव का त्रिनेत्र का तात्पर्य यह है कि सूर्य पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक, इन तीनों लोकों को प्रकाशित करता है, इसलिये तीनों लोकों के लिये वह नेत्रवत् है। इस प्रकार, शिव के वर्णन में बहुत सारी बातें सूर्य की ही चर्चा है।

यज्ञ शिव है

यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा गया हैं। क्योंकि उससे संसार का अनेक प्रकार से [illegible]ण होता है। यथा, जलवायु की शुद्धि, दान, विद्वानों की रक्षा, विद्या की उन्नति, वृष्टि, अन्न की उत्पत्ति इत्यादि। इसलिये यज्ञ शिव है। इसी कारण वह शंकर अथवा शंभु भी है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि 'एष रुद्रः यदग्निः' (१।१।५।१) अर्थात्, यज्ञाग्नि रुद्र है। क्योंकि अश्वमेघादि राष्ट्र की शक्ति की वृद्धि करनेवाले यज्ञ दुष्टों के लिये रुलाने वाले होते हैं। लोभी के लिये भी यज्ञ दुःख दायी होता हैं। रोगाणुओं के लिये भी यज्ञ विनाश का संदेश लाता हैं। ऋग्वेद के एक मंत्र में अग्नि को 'शिवो दूतो' कहा गया हैं। (द्रष्टव्यःऋग्वेद ८।३९।३) अर्थात् अग्नि देवता कल्याणकारी भी हैं, और दूत अथवा दुष्टों को दुःख देनेवाला भी हैं। अग्नि को शिव मानने के कारण ही, शिव को भस्मांगराग अथवा भस्मधारण

करनेवाला कहते हैं। यज्ञ पवित्र और पूजनीय अथवा अनुष्ठान योग्य हैं। इसलिये उसको यक्ष भी कहते हैं। शिव को यक्षस्वरूप भी कहते हैं। तात्पर्य यह है कि वह यजनीय अथवा पवित्र हैं।

सदा शिवसंकल्पयुक्त मनवाला मनुष्य भी सदाशिव है, क्योंकि मनुष्य के जैसे विचार वैसे कर्म, जैसे कर्म वैसे उसके स्वभाव बनते हैं। सदा शिवसंकल्पयुक्त मनवाले मनुष्य के विचार, कर्म और स्वभाव भी कल्याणकारी ही होंगे, इसलिये वह शिव अथवा शंकर हैं.

साधारण मनुष्यों की दोही आखें होती हैं, किन्तु विद्वानो की एक तीसरी आँख भी होती है, वह ज्ञान-दृष्टि है। अग्नि ज्ञान का प्रतीक है, इसलिये ज्ञान-दृष्टि को अग्निनेत्र भी कहते हैं, इससे विद्वान् अज्ञान और अविद्या से उत्पन्न काम या मोह को जला देता है, यह ज्ञान-दृष्टि वास्तव में वेद हैं, महर्षि मनु ने कहा है कि 'पितृदेवमनुष्याणां वेदः चक्षुः सनातनम्' अर्थात्, वैज्ञानिक, विद्वान् और साधारण मनुष्यों के लिये भी वेद ही सचमुच सनातन चक्षु हैं। इसके बिना मनुष्य उसके पास अपनी भौतिक आँखे होती हुई भी वह अंधा ही है। अतः वास्तविक विद्वान भी वही है जो वेदों का विद्वान है, एक वेदवेत्ता विद्वान जितना संसार का कल्याण कर सकता है उतना अन्य कोई भी नहीं कर सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे ही एक श्रेष्ठ विद्वान थे जिन्होंने न केवल अपने जीवन को ऊँचा उठाया, अपितु गत पांच हजार वर्षों से संसार के लोगों को उनके जीवन और उनके उपदेशों से धर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती रही है। ऐसे ही एक-दूसरे विद्वान् महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। इनके जीवन और विचारों का प्रभाव की गत सौ वर्षों से उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और विश्वभर में फैल रही है। ऐसे विद्वान संसार में बहुत विरले ही हुआ करते हैं। इनके जीवनकाल में इनको अपने ही लोगों के विरोध का सामना करना पडा। क्योंकि, वे लोग आंखें होकर भी अंधे थे। दूर की बातों को वे देख नहीं सकते थे, सूक्ष्म विषयों को वे समझ नहीं सकते थे।

इस तीसरी आँख की एक दूसरी बात भी है। पुरुष के दो भौहों के बीच में आज्ञाचक्र है। योगाभ्यास से इसके खुल जाने से दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिसको अंग्रजी में क्लेरवोयेन्स कहते हैं।

संसार में कोई भी व्यक्ति कष्ट उठाये बिना, त्याग और बलिदान किये बिना लोक कल्याण नहीं कर सकता है। यदि कवि की भाषा में कहा जाय, तो परोपकारी विद्वान स्वयं विष-पायी होता है और वह संसार के लिये चन्द्रमा का शीतल प्रकाश और गंगा की पावन धारा का दान करता है। चन्द्रमा का शीतल प्रकाश, सदुपदेश और गंगाजल पवित्रता अथवा शुद्धता का प्रतीक है। इसलिये कहते हैं कि शिव शिर पर चन्द्रमा और गंगा को धारण किया हुआ है। शिर बुद्धि का स्थान है। यही चन्द्रशेखर और गंगाधर का रहस्य है।

अब नीलकण्ठ का रहस्य को भी देखिये। "नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे" (यजुर्वेद १६।८)– इस मंत्र में नीलग्रीव शब्द आया है। इसकी व्याख्या करते हुए, महर्षि स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद भाष्य में "नीलकण्ठ" शब्द का अर्थ "शुद्ध कण्ठवाला" बताया है। शुद्ध कण्ठ का तात्पर्य शुद्ध, स्पष्ट, मधुर स्वर एवं सत्य भाषण है। विद्वानों की वाणी में ये सारे लक्षण होने चाहिये। तभी तो उनके उपदेशों का लोगों पर अच्छा प्रभाव पडेगा। लोग उनकी बातों को सुनेंगे। कामान्दकीय नीतिसार में लिखा है कि–

प्रियमेवाभिधातव्यं सत्सु नित्यं द्विषत्सु च।
शिखीव केकामधुरः प्रियवाक् कस्य न प्रियः॥
ये प्रियाणि च भाषन्ते प्रयच्छन्ति च सत्कृतम्।
श्रीमन्तो वन्द्यचरणा देवास्ते नरविग्रहाः॥

अर्थात्, सत्पुरुषों से भी और हमसे द्वेष करनेवालों से भी प्रियवचन ही बोलने चाहिये। मोर के केकारव के समान मधुरवाक् सब के लिये हर्ष कारक होती है। इसलिये कहते हैं कि ऐसे विद्वानों की वाणी में लक्ष्मी और सरस्वती निवास करती हैं और ऐसे विद्वान मनुष्यरूप में देवता माने जाते हैं। किन्तु, वाणी का मूल्य इतना तभी बढता है, जब वह कल्याणकारी हो। मुखस्तुति अथवा हां में हां मिलाने का नाम प्रियवाक् नहीं हैं। अतः इस प्रकार के कल्याणकारी विद्वान् शिव हैं, और उनकी कल्याणकारी वाणी शिवा अथवा शिवानी है।

मानव - मनको ईश्वर कहते हैं। "मनो महान्मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धिःख्यातिरीश्वरः प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संवित् विपुरं चोच्यते।" (वायु पुराण ४।२४)

यहां मन के बारह नाम दिये गये हैं। उनमें से एक नाम "ईश्वर" है। क्योंकि मन बडा सामर्थ्यशाली है। किन्तु विषयों के पीछे जाने से तथा क्रोधादि विकारों के कारण मन का सामर्थ्य नष्ट हो जाता है।

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसतो।
मन्यु महाराज पिब प्रशाम्य॥

(विदुरनीति ४।६८)

अर्थात, क्रोध स्वस्थ पुरुष को भी ध्वस्त करता है, वह बडा कटु है और सिरदर्द का कारण है। क्रोध में आकर मनुष्य जघन्य पाप भी कर बैठता है, और उसका व्यवहार बडा परुष और दिल दुखानेवाला होता है। इसलिये सत्पुरुष क्रोध को पी जाते हैं, किन्तु अन्य लोग इसको नहीं पी सकते। अत: शिव का विष पीने का तात्पर्य विद्वान या सत्पुरुषों व्दारा क्रोध का पीना है।

विद्वान् रुद्र भी है। दुष्टों को रुलाने का सामर्थ्य उसके पास होना चाहिये। केवल नैतिक उपदेश देना, धनवान या बलवानों की स्तुति या चापलूसी करके अपना जीवन निर्वहण करना, ये विद्वान के योग्य कार्य नही हैं। अथर्ववेद कहता है—

अग्निर्न शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्। (अथर्ववेद १।१।१)

अर्थात, समाज या राष्ट्र के शत्रुओं को, विद्वान् लोग इस प्रकार नष्ट कर डाले कि जैसे दावानल जंगलों को जला डालता है। यह है विद्वानों का रुद्र रूप। समाज में या राष्ट्र में अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार इत्यादि को देखकर भी जो विद्वान रुद्र नही बन जाते, वे विव्दान ही कैसे? विद्वान की वाणी, उसकी लेखनी और आवश्यकता पडने पर उसकी सारी शक्ति रुद्राणी बन जाती है। ऐसे विद्वान ही कल्याणकारी शिव माने जाते हैं और पूजे जाते हैं। अन्य विद्वान या तो तोता पाठ करते रहते हैं या तो कुत्तों की तरह सेवावृत्तिसे पेट भरते रहते हैं इनकी पूजा कैसे होगी? जब विद्वान् अग्नि या रुद्र नही बनते, अर्थात् जब ये शूर-वीर और दुष्ट संहारक नहीं बनते, समाज या देश में मूर्ख, धूर्त और दुष्टों का राज्य होता है। और इस पापके लिये विद्वान ही दोषी सिद्ध होंगे।

विद्वान धीर गंभीर होते हैं। संसार में रहकर भी, विषयों के बीच में होते हुए भी, ये उनसे विचलित नहीं होते। "विकार हेतो सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।" भगवान् शिव की गले में सर्पों की माला है। ये सर्प विषय-वासनाओंके प्रतीक हैं। ईर्षा, द्वेषादि के चिन्ह हैं। उनसे शिव (विद्वान् पुरुष) का मन विकृत नहीं होता है।

शिव को स्थाणु भी कहते हैं। वह प्राय: योगमुद्रा में स्थिर बैठा हुआ दिखाई देता है। स्थाणु शब्द का अर्थ भी स्थिर है। विद्वानों के लिये कहा गया है—

गूढधर्माश्रितो विद्वान् ज्ञानचरितं चरेत्।
अन्धवज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत॥

अर्थात्, इनको चाहिये कि ये सांसारिक बातों में न फँसे, अपने धर्म व कर्तव्यों का पालन करते रहें, बुद्धिपूर्वक व्यवहार करते रहें, संसार में बुरी बातों को देखते हुए भी, सुनते हुए भी, निन्दा और प्रशंसा से प्रभावित न होते हुए शांतिपूर्वक अपने कार्य करते रहें। भगवद्-गीता की भाषा में कहूं तो विव्दान "स्थित–प्रज्ञ" हो। जैसे किसी निर्वात प्रदेश में, एक दीप-शिखा निश्चल और निष्फन्द होकर जलती रहती है, वैसे ही विव्दान को शांत चित्त होकर रहना चाहिये।

प्रजा - रक्षक राजा शिव है

मैंने पहले ही बता दिया है कि विव्दान शूर-वीर और अग्नि के समान तेजस्वी हो, अग्रणी हो, दुष्टों को भस्म करनेवाला हो। ऐसे विव्दान हीं प्रजा-रक्षक है, और वही राजा बनने योग्य है। एक दुर्बल, निस्तेज विव्दान् जो अपनी विद्या की भी रक्षा नहीं कर सकता है वह दूसरों की क्या रक्षा करेगा? इसलिये, प्रजारक्षक राजा सामर्थ्यशाली ईश्वर माना जाता है। मगधेश्वर, लंकेश्वर, मिथिलेश्वर इत्यादि शब्दों में 'ईश्वर' शब्द 'राजा' व 'प्रजापति' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रजा के कल्याण के निमित्त सदा कार्य करनेवाला राजा ही शिव और शंकर है।

भगवान शिव के सम्बन्ध में कहा जाता है कि सारा संसार उसकी सेवा में हैं किन्तु वह संन्यास व वैराग्य धारण किये हुए रहता है। एक आदर्श राजाकी स्थिति भी यही है। राष्ट्र की सारी सम्पत्ति उसकी सेवा में उपलब्ध रहती है किन्तु वह उसके स्वार्थ या निजी सुख के लिये नहीं, प्रजा के लिये है। राजा इस से निर्लिप्त और निर्मोही होकर रहता है।

शिव को त्रिनेत्र कहा जाता है। नेत्र का कार्य देखना, और मार्ग दिखाना हैं। इसलिये मंत्रणा देनेवाले मंत्रि, मार्गदर्शक करनेवाले ऋषिमुनि या गुरुजन इत्यादि मनुष्य की आंखें हैं। एक राजा के लिये, उसका मंत्रिमंडल, या उसकी सभा अथवा समितियां उसकी असली आंखे हैं।

इन्द्रस्य हि मंत्रिपरिषद् ऋषीणां सहस्रम्।
न तच्चक्षुः तस्मादिमं द्वयक्षं सहस्राक्षमांहु॥ [अर्थशास्त्र १।१५]

अर्थात, इन्द्र के पास हजार ऋषियों का मंत्रिपरिषद् था अथवा राजसभा थी। इसलिये उसको सहस्राक्ष कहते थे। वास्तव में उसके पास दोही स्वाभाविक आंखें थीं। ऋग्वेद कहता है—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परिविश्वानि भूषथः सदांसि। [मण्डल ३, सूक्त ३८, मंत्र ६]

अर्थात, राजा के पास तीन सभायें हों। वह इनके आधीन होकर ही कार्य करें। अकेला और स्वतंत्र होकर राज्य का कोई भी कार्य वह न करे. भले वह कितनाही बडा बलवान और मेघावी क्यों न हो। महर्षि स्वामी दयानन्द ने इन तीन सभाओं को धर्म सभा, विद्या सभा और राजसभा बताया है। ये सभायें राजा के लिये आंखों के समान हैं। इसलिये राष्ट्र के स्वामी, ईश्वर को त्रिलोचन अथवा 'तीन आंखवाला' कहते हैं।

शिव की पत्नी दुर्गा है, दुर्गा भूमाता है, उसके स्वामी ईश्वर याने राजा है। इसको दुर्गा इसलिये कहते हैं कि वह राष्ट्र व समाज के शत्रुओंके लिये दुगम है। राष्ट्र का सुरक्षा दल इतना सक्षम होना चाहिए कि उसकी ओर शत्रु आंखे उठाके भी देखने का साहस न करें। इसलिये दुर्गा माता को सिंह के ऊपर बिठाया गया है। सिंह को कोई छेडने का साहस भी नहीं करता। दुर्ग शब्द का अर्थ 'किल्ला' भी होता है, किल्ले के स्वामी दुर्गाधीश है, मनुस्मृति में धनुर्दुर्ग, महीदुर्ग, अब्दुर्ग, वृक्षदुर्ग, गिरिदुर्ग, और नृ-दुर्ग का उल्लेख है। देवी दुर्गा की भुजायें उसकी शक्तियां हैं, उसके हाथों में धनुष इत्यादि प्रतीकात्मक है, ये राष्ट्र रक्षा के विभिन्न साधनों का प्रतिनिधित्व करते हैं,

शिव की पत्नी को राजेश्वरी भी कहते हैं, यह राजेश्वरी राजा की सभा है, वस्तुतः राष्ट्र की स्वामिनी यह सभा ही है, किसी एक व्यक्ति को राजा नहीं मानना चाहिये, सभापति राजा सभाधीन होकर कार्य करें और सभा राजाधीन होकर अनुशासन का पालन करें, यह हमारा आदर्श है। उस प्रकार भगवान् शिव का व्यक्तित्व प्रतीकात्मक हैं। इस प्रकार देवी-देवताओं के प्रतीकों में साहित्य और कला का एक सुन्दर संगम अथवा समन्वय दिखाई देता हैं। ऐसे उदाहरण संसार में अन्यत्र मिलना कठिन है। एक बहुत प्राचीन आचार्य शौनक ने लिखा है कि-

> सत्त्वान्यमूर्तान्यपि च देवतावन्महर्षयः।
> तुष्टुवुः ऋषयः शक्त्या तासु तासु स्तुतिष्विह ॥ (बृहद्देवता १।८१)

अर्थात्, ऋषियों ने अमूर्त विषय अथवा केवल विचार या सिध्दान्तों का भी मूर्त-विषयों के समान वर्णन किया है। विभिन्न शक्तियों को भी मूर्तिमान् देवताओं के समान स्तुति की है। इसका तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल में, हमारे देश में ललित कलाओं के माध्यम से ज्ञान व शिक्षा का प्रचार हुआ करता था। इसी कारण काव्य के साथ साथ चित्र और स्थापत्य कला का भी यहां बहुत उन्नति हुई थी। हजारों देवी-देवताओं का जन्म इस प्रकार यहां के प्राचीन मनीषियों के मन में हुआ। इनका सौन्दर्य अध्यात्मवादी और लौकिक, दोनों प्रकार के लोगों को मुग्ध करनेवाला था। अतः इनका प्रचार, न केवल भारत में, अपितु

सारे संसार में हुआ। रोम और मिश्र की सभ्यता के पूर्व भी, ईसाई और मुसलमान सम्प्रदायों के उदय होने के पहले ही, यह भारतीय आर्य संस्कृति उन देशों में फैल चुकी थी। इस बात के लिये अनेक प्रमाण मिलते हैं। अमेरिका के मूलनिवासी भी शिवाराधक थे।

यहाँ एक अन्य बात का भी उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। यह एक सुविदित बात है कि वेद मंत्रो के अध्यात्म, अधिदैव और अधियज्ञ अर्थ होते हैं। इसलिये, एक ही वेद मंत्र अनेक अर्थों को प्रकट करने में समर्थ होता हैं। इसी प्रकार, ये प्रतीकात्मक देवि-देवतायें भी अनेक विषयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनको समझने के लिये इन प्रतीकों की भाषा का ज्ञान आवश्यक हैं। भगवान् शिव का स्वरुप ऐसे ही एक अर्थगर्भित चरित्र चित्रण है।

महामानव शिव

हमने देखा कि "शिव" व "महादेव" इत्यादि संज्ञायें शुद्ध वैदिक शब्द हैं और इन शब्दों के बडे सुन्दर और व्यापक अर्थ होते हैं। महर्षि मनु ने कहा है कि-

> सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
> वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ (अध्याय १, श्लोक २१)

इसका तात्पर्य यह है कि वेद-मंत्रों के शब्दों को लेकर नाम रखने की परम्परा हमारे यहां आदिकाल से चली आ रही है। इस प्रकार पता नहीं कि शिव के नाम से कितने लोगों का नामकरण हुआ होगा। आज भी इस नाम के हजारों व्यक्ति हैं। बहुत प्राचीन काल में महादेव नाम के एक महापुरुष हमारे देश में पैदा हुए थे। उनका पूरा इतिहास आज उपलब्ध नहीं है। क्योंकि बहुत प्राचीन ग्रंथ धूर्तों के व्दारा नष्ट किये गये हैं। लाखों वर्ष पूर्व की बात होने से मौखिक रूप से भी यह इतिहास शुद्ध रूप में रह नहीं पाया है। इस महापुरुष के वास्तविक नाम के बारे में भी निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन हैं। तथापि, उपलब्ध विभिन्न प्राचीन ग्रंथों में जो कुछ भी सामग्री इस महापुरुष के सम्बन्ध में मिलती हैं इससे निम्न बातें स्पष्ट हो जाती हैं-

अ) महादेव रामायणकाल से भी पूर्व काल के थे।

आ) यद्यपि उनको महादेव, महेश्वर, शिव, शंकर इत्यादि नामों से याद किया जाता है, तथापि प्राचीन ग्रंथों में आनेवाले सारे वर्णन प्रायः एक ही व्यक्तित्व को केन्द्र बिन्दु बनाये हुए हैं।

इ) हिमालय की किसी ऊँची चोटी पर वे रहते थे और सारा आर्यावर्त उनका प्रभाव क्षेत्र रहा।

६) वे एक महान् विद्वान्, योगी, आचार्य, दीर्घजीवी और धनुर्धर थे।

महर्षि दयानन्द ने पूना में अपने एक व्याख्यान में कहा था कि–

ब्रह्मदेव का पुत्र विराट, उसके पुत्र विष्णु सोमसद थे और अग्निष्वात्त का पुत्र महादेव था। ये ही विष्णु और महादेव आगे जाकर ब्रह्मा के साथ त्रिमूर्ति में मुख्य देवता करके प्रसिद्ध हुए। मंद, सुगंध और शीतल वायु जहां चल रही है और रमणीय बनस्पतियां जहां उगी है और जहां पर स्फटिक के सदृश निर्मल झर्झरोदक बह रहा है, ऐसे हिमालय की चोटी पर विष्णु वास करने लगा। उसी को वैकुण्ठ भी कहते थे। फिर दूसरे हिमाच्छादित, भयंकर, ऊँचे प्रदेश में महादेव वास करने लगा। उसे कैलाश कहते थे।' (उपदेश मन्जरी, आठवाँ व्याख्यान)

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में भी 'शंन्नो मित्रः...'' इस मंत्र की व्याख्या करते हुए भी महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि "मनुष्य को योग्य है कि परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करे, उससे भिन्न की कभी न करे। क्योंकि ब्रह्म, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान, दैत्य, दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास करके उसकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करी।"

इससे स्पष्ट है कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती, महादेव को एक ऐतिहासिक महापुरुष और हमारे एक पूर्वज के रूप में मानते थे।

अग्निष्वात्त, मरीचि का पुत्र और देवों का पितर था (द्र. मनुस्मृति ३।१९६)

रामायण बालकाण्ड में एक शिवाश्रम का उल्लेख आता है। यथा–

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य पुनिर्पुंगवः।
अब्रवीत् श्रूयतां राम शिवाश्रमस्त्वयं पुण्यः॥ (सर्ग १४, श्लोक १९)

अर्थात् गंगा और सरयू नदी के संगम स्थान पर वहाँ दिखाई देनेवाला वह आश्रम शिव का था। विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को उस आश्रम का परिचय कराया। रामायण में ही शिवधनुष का प्रसिद्ध प्रकरण आता है। यह शिवधनुष राजा जनक के पास सुरक्षित था। बडे बडे वीर पुरुष उस धनुष् को उठा भी नहीं पाते थे। भगवान रामचंद्र ने उसको तोड दिया। जब यह समाचार परशुराम को मिला वह बहुत क्रोधित हुआ। क्योंकि वह धनुष् उसके आचार्य का था। शिव धनुर्विद्या के आचार्य थे और उच्चकोटि के वीर थे। बडे बडे दुष्ट दानवों को उन्हेंनें संहार किया था। इस प्रकार प्रजा की रक्षा करके पूजनीय देव माने गये थे।

प्राचीन काल में व्याकरण शास्त्र की दो शाखायें बड़ी प्रसिद्ध थीं। एक थी ऐन्द्र शाखा और दूसरी थी माहेश्वरी शाखा। ऐन्द्र शाखा का आद्य आचार्य इन्द्र था और माहेश्वरी शाखा का प्रवर्तक महेश्वर था। आचार्य पाणिनि माहेश्वरी शाखा के थे। अष्टाध्यायी के आरम्भ में जो चौदह प्रत्याहार सूत्र दिये गये हैं, उनको शिवसूत्र और माहेश्वर-सूत्र भी कहते हैं। क्यों कि उनकी रचना शिव, महेश्वर ने की थी।

भगवान् शिव एक बहुत बडे योगी थे। शिवस्वरोदय नामक पुस्तक इनके नाम से प्रसिद्ध है। एक प्राचीन ग्रंथ शौनक सूत्र में शिव के आद्य विमानाचार्य होने का भी प्रमाण मिलता है।

शिव की पत्नी का नाम उमा था और उनके दो पुत्र भी थे। एक का नाम था गणेश और दूसरे का नाम था कुमार। इनमें से गणेश बडा मेधावी था और कुमार एक श्रेष्ठ सेनापति था।

विद्वान होने के कारण शिव देवता माने गये और ज्ञान, वैराग्य, कीर्ति, पराक्रम, राज्य और श्री इन छः भग अथवा ऐश्वर्यों के कारण वे भगवान् माने गये; अपने श्रेष्ठ कर्मों के कारण अमर हो गये और दीर्घजीवि होने के कारण मृत्युंजय कहलाये गये।

इस प्रकार शिव, शंकर महादेव आदि सारे नाम परमेश्वर के भी, हैं, सूर्य के भी हैं और इतर वस्तुओं के भी हैं। इसलिये अविद्वानों में शिव के व्यक्तित्व के बारेमें भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक था। अतः ऐतिहासिक महापुरुष शिव की बातें परमात्मा में आरोपित की गईं। सूर्यादि पदार्थों के वर्णन भी परमेश्वर के माने जाने लगे। इसके फलस्वरूप, केवल एक ही शिव रह गये और सूर्यादिपदार्थ एवं महापुरुष, लोगों के स्मृतिपटल से अदृश्य हो गये।

शिवलिंग

संस्कृत भाषा में लिंग शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। यथा "हेतुरपदेशो लिंगं प्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरम्" (वैशेषिक दर्शन ९।२।४)

अर्थात्, हेतु, उपदेश, लिंग, प्रमाण और करण, ये सारे शब्द समानार्थक हैं। तथा, "अस्येदं कार्यं, कारणं, संयोगि, विरोधि, समवायि चेति लैंगिकम्" (वैशेषिक दर्शन ९।२।१) अर्थात् कार्य को देखकर कारण का, कारण को देखकर कार्य का, संयोगको देखकर संयोगी का, विरोध को देखकर विरोधी का और समवाय को देखकर समवायी का जो ज्ञान होता है, उसको लैंगिक यानी आनुमानिक ज्ञान कहते हैं। क्योंकि लिंग शब्द का अर्थ अनुमान भी होता है। मीमांसा परिभाषा में लिखा है कि "लिंग नाम सामर्थ्यम" अर्थात् सामर्थ्य को भी लिंग कहते हैं।

लेकिन हमारे मूर्तिपूजक शिव-भक्त, एक ही लिंग को जानते ह— पुरुष लिंग अथवा जननेन्द्रिय। क्योंकि शिवपुराण में लिखा है कि शिवने एक बार दारुवन में अपने भक्तों के कल्याण करने की इच्छा से ऋषि-पत्नियों के सामने नंगा शरीर गया और उनके साथ व्यभिचार किया। इससे ऋषि लोगों ने क्रोध में आकर शिव को शाप दिया कि उनकी गुप्तेन्द्रिय टूट जावे—

त्वया विरुध्दं क्रियते वेदमार्ग विलोपिना।

ततस्त्वदीय तल्लिगं पततां पृथुवीतले

देवी भागवत् में भी लिखा है कि—

शम्भोः पपात भुवि लिंगमिदं प्रसिध्दम्।

शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य।

तेन ये नरा भुवि भजंति कपालिनं तु।

तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः॥ (स्कन्द ५, अध्याय १)

अर्थात्, यह जो शिवलिंग है, यह शिव की गुप्तेंद्रिय है। भृगु ऋषि के शाप से यह टूट कर नीचे गिरी है। इसकी जो लोग पूजा करते हैं, वे इहलोक में या परलोक में कैसे सुख पायेंगे ?

इस प्रकार पुराणों में शिवलिंग को शिव नामक देवता विशेष की गुप्तेन्द्रिय बताया गया है और देवी भागवत् में इस लिंग पूजा को पाप कहा गया हैं। क्योंकि यह लिंग किसी पापी का है। ऐसे भी तो, हमारी संस्कृति में किसी की गुप्तेन्द्रिय को देखना भी पाप माना जाता है। फिर उसकी पूजा की बात, कल्पना भी नहीं की जा सकती, भले वह कोई देवता या भगवान् ही क्यों न हो। इसलिये यह शिवलिंग की कहानी सम्भवतः वाममार्गियों ने बनाई होगी। शैव सम्प्रदाय में इसका प्रचार हुआ। ये साम्प्रदायिक लोग एक दूसरे की निन्दा करते रहते हैं। इसलिये शाक्त सम्प्रदाय के लोगों ने शिव की भी निन्दा की हैं और शिवलिंग की भी निन्दा की है।

यहां लिंग पूजक एक बात को भूल जाते हैं कि लिंग की दिशा योनि के अंदर की ओर न होकर, बाहर की ओर है। इससे स्पष्ट है कि यह लिंग भी कोई प्रतीक है और इसे स्वाभाविक लिंग और योनि की प्रतिमा समझना गलत है। जैसे लिंग शब्द के अनेक अर्थ हैं, वैसे ही योनि शब्द के भी कारण आदि अर्थ हैं। विभिन्न प्रकार के लिंगों के नामों से शिवलिंग का रहस्य खुल जाता है। किसी का नाम ज्योतिर्लिंग है और किसी का नाम भूलिंग अथवा पृथ्वीलिंग है। इस प्रकार ये लिंग पंचमहाभूतों की ओर संकेत करते हैं। कई स्थानों पर पंचलिंगेश्वर मंदिर हैं। बारकूर (कर्नाटक) में ऐसे ही एक पंचलिंगेश्वर मन्दिर है। तमिलनाडु में कान्चीपुरम् में पृथ्वीलिंग, तिरूवन्नैक्को में अप्पुलिंग (आपः अथवा जल-लिंग), तिरुवन्नमलै में ज्योतिलिंग, चिदम्बरम में आकाशलिंग, और कलहस्ति (आन्ध्र प्रदेश) में वायुलिंग मन्दिर हैं। इन नामों से यह स्पष्ट है कि ये लिंग पंचमहाभूतों के प्रतीक हैं और लिंग के नीचे जो योनि है वह प्रकृति है। मूल प्रकृति से पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। इसलिये लिंगों को योनि से बहिर्मुख होकर निकलते दिखाया जाता है। अतः यह शिवलिंग सृष्टि-विद्या को बतानेवाला एक स्थूल प्रतीक है। ब्राह्मणग्रंथों से तथा इतर प्राचीन संस्कृत पुस्तकों में भी, लिखा हुआ है कि परमात्माने सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकृति के गर्भ में वीर्य अथवा बीज डाल दिया। परमात्मा का वीर्य अथवा बीज का तात्पर्य उसकी सृजन्-शक्ति है। इसके बिना जड प्रकृति में गति उत्पन्न नहीं हो सकती। यह आलंकारिक वर्णन भी लिंग-योनि की कल्पना का आधार बना।

अब प्रश्न है कि इसको शिव-लिंग क्यों कहते है ? ऊपर की चर्चा से पाठकों के मन में शिव-लिंग का तात्पर्य स्पष्ट होने में अब देर नहीं लगेगा। क्योंकि शिव-लिंग शब्द के, कल्याण का कारण, कल्याणकारी परमेश्वर के होने के प्रमाण, परमात्मा का सामर्थ्य, इत्यादि अर्थ होते हैं। ये पंचमहाभूत, जीवों के लिये कल्याण के हेतु हैं, परमात्मा के अस्तित्व के प्रमाण हैं और ये परमात्मा के सामर्थ्य को बताते हैं। इस प्रकार शिवलिंग भी साहित्यकार और कलाकारों का चमत्कार है और यह शिक्षा का साधन है। परमेश्वर की उपासना के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

योग साधना में पंचमहाभूतों का वशीकरण करने के लिये जो यंत्र बनाये जाते हैं उनको भी लिंग कहते हैं। उदाहरण के लिये, पृथ्वी-तत्व को बश करने के लिये चौकोण का पीला रंग का एक कागज का यन्त्र बनाकर आंखों के सामने बारह अंगुल दूरी पर रखकर, चन्द्रनाडी से उस यन्त्र तक श्वास को फेंकते हुए "ओ३म्" का मानसिक जप करते हुए, कुछ देर बाद, दोनों अंगुठों से कान, मध्यमा से नाक, अनामिका और कनिष्ठिका से मुंह तथा तर्जनियों से दोनों आंख बन्द करने पर यदि पीला रंग दिखाई दिया तो समझाना चाहिये कि साधक को पृथ्वी तत्व का उदय हुआ। इसी साधना को पारिभाषिक शब्द में लिंग-पूजा कहते हैं। (देखो, पातन्जल योग प्रदीप, पृष्ठ २४४) लगता है कि वाममार्गियों ने इसी का दुरुपयोग किया है। किन्तु यह साधना भी परमात्मा की उपासना के विकल्प के रूप में नहीं है।

उपसंहार

उपर्युक्त चर्चा से भगवान शिव के सम्बन्ध में कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। पहली बात तो यह है कि शिव की प्रतिमा और लिंग न तो परमेश्वर की प्रतिमा है और न उसका प्रतीक

है। इसलिये ये उपासना के योग्य नहीं हैं। यदि कोई इनकी उपासना करता है तो वह निःसन्देह व्यर्थ है। क्योंकि इन प्रतिमाओं का प्रयोजन कुछ और ही है। ये शिक्षा के बडे आकर्षक माध्यम हो सकते हैं। जैसे कोई अध्यापक बच्चों को पृथ्वी का स्वरूप समझाने के लिये पृथ्वी का नक्शा अथवा भूगोल की कोई प्रतिमा बनाकर दिखाता है, अथवा जैसे कोई वाहन परिचालक,नृत्य करनेवाले, आदि सांकेतिक भाषा का प्रयोग करते हैं, वैसे ही इन प्रतिमाओं की और प्रतीकों की भी बडी उपयोगिता है। इनका बडा सांस्कृतिक महत्व भी है। आज-कल मुक्त-विश्वविद्यालयों की चर्चा होने लगी है। कुछ लोगों को कदाचित यह बात नई लग सकती है लेकिन सच्चाई यह है कि मुक्त-विश्वविद्यालयों की परम्परा हमारे देश में हजारों वर्षों से चलती आयी है। हमारे देवि-देवताओं के मंदिर ही वे मुक्त-विश्वविद्यालय हैं। ये मंदिर प्रारंभ में विद्वानों के स्थान थे, विद्या-प्रसार के केन्द्र थे। ये मूर्तियां, शिक्षा के साधन थे। इनके माध्यम से दुर्ग्राह्य विषय भी सुग्राह्य हो जाते थे और ये देखने के लिये रमणीय लगती थीं। लेकिन यह एक कितनी खेद की बात है कि उन जडमूर्तियों की चेतन-देवताओं के समान पूजा की जाती है और इस पूजा के आडम्बर में लोग कितना धन, समय इत्यादि को व्यर्थ नष्ट करते हैं।

दूसरी बात यह है कि प्राचीन काल में, हमारे देश में कला और साहित्य के सृजन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिध्दि मानी जाती थी। कला और साहित्य इस सिध्दि में सहायक माने जाते थे। इनके माध्यम से धर्म का उपदेश अर्थ की प्राप्ति, काम की पूर्ति और मोक्ष प्राप्ति का मार्गदर्शन भी सिद्ध हो जाते थे। इसलिये इनका बडा विकास हुआ। किन्तु, जैसे मैंने प्रारम्भ में ही कहा था, अविधा और अज्ञान के कारण, अर्थ का अनर्थ हुआ और इन वस्तुओं का बडा दुरुपयोग भी हुआ। प्रायः नाम की साम्यता के कारण भी भ्रम आसानी से फैल जाता है। भगवान शिव के बारे में भी यही हुआ। जो बातें परमेश्वर के लिये घटती हैं, उनको सूर्य, विद्वान व राजा की कल्पना और ऐतिहासिक महापुरुष शिव के साथ जोड दिया गया। फिर, महापुरुष शिव, सूर्यादि की बातों को परमेश्वर के साथ भी जोड दिया गया। इसके अतिरिक्त, शिव नाम के महापुरुष एक नहीं, अनेक हुए होंगे। महाभारत काल में, अर्जुन को जिस शिव ने पाशुपतादि अस्त्र दिया था, वह रामायण काल से भी पूर्वकाल का शिव नहीं हो सकता। जैसे महाराज जनक के कुल का भी नाम जनक प्रसिद्ध हुआ था वैसे ही शिव के कुल का भी नाम शिव प्रसिद्ध हुआ होगा। इस कारण भी इनके इतिहास के सम्बन्ध में भ्रान्ति फैल गई। अतः आजकल जब हम शिव-पूजकों को नये नये पारायण-श्लोक या स्तोत्रपाठ करते हुए सुनते हैं, तब पता नहीं चलता कि ये किसकी स्तुति कर रहे हैं? परमात्मा की, सूर्य की, या किसी व्यक्ति की? अथवा किसी

कपोलकल्पित देवता की? पूजक या भक्त तो श्रद्धा के नाम से, इस पर स्वयं विचार नहीं करते? वे इसके बारे में अंधे बनकर रहना ही पसन्द करते हैं। क्योंकि उनको गलत पाठ पढाया गया है। जैसा कि "धार्मिक बातों में अपनी बुद्धि से काम लेना श्रद्धा के विरुद्ध है"। वास्तव में यही तो पाखण्ड की जड है।

अमरकोश में भगवान् शिव के "शंभुरीशः पशुपतिः शिवः शूली, महेश्वरः। ईश्वरः शर्वः, ईशानः, शंकरश्चन्द्रशेखरः। भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशो मृडः। मृत्युन्जयः कृत्तिवासः पिनाकी प्रमथाधिप..." इत्यादि ४४ नाम बताये गये हैं और श्री कांची कामकोटि पीठ के जगतगुरु श्री शंकराचार्य मठ द्वारा प्रकाशित "सर्वजन सर्व देवता पूजा पद्धति" में कुछ ऐसे पारायण श्लोक दिये गये हैं-

> नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय, भस्मांगरागाय महेश्वराय।
> नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय, तस्मै नकाराय नमश्शिवाय ॥
>
> शिवाय गौरीवदनारविन्दसूर्याय दक्षाध्वर नाशकाय।
> नीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै शंकराय नमश्शिवाय ॥
>
> यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय।
> दिव्याय देवाय दिगम्बराय, तस्मै यकाराय नमश्शिवाय ॥

यहां किस शिव का वर्णन है, यह कहना कठिन है। प्रायः जितने भी पदार्थ शिव के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन सब को यहाँ मिला दिया गया है। इस प्रकार भगवान शिव की उनके भक्तों के द्वारा ही बडी दुर्दशा की गई है।

जैसे भगवान शिव की दुर्दशा हो चुकी है, वैसे ही शिवरात्रि के उत्सव की भी दुर्गति हुई है। इसका शुद्ध और अकलुषित वैदिक स्वरूप मिलना आज बहुत कठिन हो गया है। प्रतिवर्ष माघ १४, कृष्ण-पक्ष को शिवरात्रि का उत्सव मनाया जाता है। उसके बाद वर्ष का बारहवां महीना फाल्गुन प्रारंभ होता है। शिवरात्रि का उत्सव ग्यारहवां महीने में पडता है। रुद्र भी ग्यारह हैं। इस महीने से सूर्य का उग्र अथवा रुद्रस्वरूप भी प्रगट होने लगता है। उसके बाद ऋतु बदलने का समय आ जाता है। ऐसे समय अर्थात ऋतुओं के संधिकाल में, हमारे देश में महायज्ञों का आयोजन किया जाता था। सोम-याग ऐसा ही एक महायज्ञ है जो महीने भर चलता है। इस यज्ञ में रातभर चलनेवाली अतिरात्र यष्टि और अग्निष्टोम भी समाविष्ट है। इन यज्ञों के द्वारा प्रकृति को शिव अर्थात् कल्याणमय बनाने की योजनायें बनाई

जाती थीं। शिवसंकल्प के व्रत–धारण किये जाते थे। संसार को दुष्ट तत्वों से मुक्त करके यहां सुख और शांति फैलाने के लिये प्रयत्न किये जाते थे। नये वर्ष से, विशेष यज्ञ के साथ कल्याणकारी कार्य करने के लिये हमारे पूर्वज चलते थे। इसी बीच में होली या कामदहन का पर्व भी आ जाता है। यह मानसिक और भौतिक दोषों को जला देने का पर्व है। पवित्र विचारों से मन पवित्र बनता है और गंदगी को जला देने से, तथा यज्ञाग्नि से पर्यावरण भी पवित्र बन जाता है। इन सारे पर्वों के साथ कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के भी जुड़ जाने से इनका महत्व और भी बढ़ गया। प्रचार भी अधिक हुआ।

लेकिन कालान्तर में, लोग विद्या के प्रचार में कमी होने के कारण, इन पर्वों की सूक्ष्म बातों को समझ नहीं पाये। मोटी बातों को उन्होंने अवश्य याद रखी। किन्तु जब इतिहास को कहानियों के रूप में सुनाया गया और मार्मिक बातों को आलंकारिक भाषा में बताई गई, तब सर्वसाधारण जनता में इन बातों की गहराई तक जाने का सामर्थ्य न होने के कारण अन्ध विश्वास फैल गया। साम्प्रदायिक विवादों का यही कारण है। स्वार्थी तत्वों ने लोगों के अन्धविश्वास का पूरा लाभ उठाना प्रारम्भ किया। इससे हमारी वैदिक संस्कृति दूषित हुई है। लेकिन थोडा सा कष्ट उठाने से ये सारे दोष दूर किये जा सकते हैं। हमें स्वार्थ और आलस्य को छोडना पडेगा, वेदादि सत्यशास्त्रों का अध्ययन और उनका प्रचार करना पडेगा। इससे वैदिक परम्परा की रक्षा होगी। लोगों के विचार शुद्ध और पवित्र होंगे। ज्ञान का प्रकाश फैलेगा। अज्ञान, अंधविश्वास और कुरीतियां दूर होंगी। यही शिव की सच्ची पूजा है। इसी में हम सबका कल्याण है, इसीसे संसार मंगलमय बनेगा, और सर्वत्र सच्चे अर्थ में शिव का दर्शन होगा।

श्री ज्येष्ठ वर्मन की कृतियाँ

तपः फलोदयम्	: संस्कृत एकांकिका [सन १९६७ में कुलपति के. एम. मुन्शी रजत कलश विजेता और आकाशवाणी मुम्बई द्वारा प्रसारित।] शारदा (संस्कृत मासिक) १९६७ तथा दीपावली विशेषांक में प्रसारित.
बुभुक्षितः किं न करोति पापम्	: संस्कृत एकांकिका (सन १९७३ में आकाशवाणी मुम्बई द्वारा प्रसारित।)
मातृभूमिः	: संस्कृत एकांकिका। (सन १९७४ में आकाशवाणी बंबई द्वारा प्रसारित।)
The Guru.	: अंग्रेजी एकांकिका। (सन १९७५ में Dayanandite द्वारा प्रकाशित और विलसन कालेज के विद्यार्थियों द्वारा रंगभूमि में प्रस्तुत।)
Guidelines for Interpretations of Vedic Hymns.	: Published by Mrs. D R. Singh, Vile Parle, Bombay. 1975.
श्री गणेश का रहस्य	: प्रकाशक : विद्या आर्य सभा बम्बई १९८१
ईश्वर का सच्चा स्वरूप और उसकी उपासना	: प्रकाशक : आर्यप्रतिनिधि सभा, बम्बई १९८३
महर्षि दयानन्द सरस्वती	: पुस्तिका। प्रकाशक : आर्य समाज, चेंबूर १९८०
Indian God-heads.	: Pamphlet Printed and Published by the author. 1973
A Case for Chastity.	: Printed and Published by the author 1973
Bad History in School-books	: Published by the Arya Pratinidhi Sabha, Bombay 1983

धर्मो रक्षति रक्षितः	: प्रकाशक : आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई (1983)
Judicial Scrutiny is the Only Answer	: Published by the Arya Sabha Maharashtra (1985)
Panini and His Ashtadhyayi	: Radio Talk. आकाशवाणी मुम्बई व्दारा प्रसारित । Published by 'Vedic Heritage' Kerala 1975
दयानन्दाष्टकम्	: संस्कृत कविता : आकाशवाणी मुम्बई व्दारा प्रसारित ।
वैदिक परिवार नियोजनम्	: संस्कृत कविता । आकाशवाणी मुम्बई व्दारा प्रसारित ।
धर्म ऋतुवर्णनम्	: संस्कृत कविता । आकाशवाणी मुम्बई व्दारा प्रसारित
महात्मा गांधीः	: आकाशवाणी मुम्बई व्दारा प्रसारित संस्कृत व्याख्यान ।
Introduction to "Rigveda Darshan".	: Publishers: Vaidika Sahitya Prakashana Samiti, Udupi. 1980. [A detailed note explaining various aspects of the Vedic literature, in 164 pages in Kannada for the "Rigveda Darshana"]
सप्त मर्यादाः	: प्रकाशक : वैदिक गर्जना १९७८ (४३ भागों में प्रकाशिक लेखनमाला)
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्	: प्रकाशक : वैदिक गर्जना १९८० (२० भागों में प्रकाशित लेखन माला)

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः	: प्रकाशक : वेद प्रकाश । (कन्नड में चालू लेखन माला अब तक ४६ लेख छप चुके हैं ।)
Fundamental Principles of Interpretations of Vedic Hymns.	: Research paper presented at the 31st All India Oriental Conference (Jaipur) 1982.
Vedic Concept of Nationalism in Modern Perspective	: Research paper for the 32nd All India Oriental Conference
Political Thoughts of Maharshi Dayanand Saraswati.	: Research paper, read at the "Dayanand Memorial Lectures" organised by Vidya Arya Sabha, Bombay (1984.)

अब तक प्रकाशित कुछ अन्य महत्वपूर्ण लेख :

अनैतिक व्यापार	: अनैतिक व्यापार विरोधी अभिमान व्दारा आयोजित गोष्ठी में प्रस्तुत निबन्ध । (इसका कन्नड अनुवाद 'होस दिगन्त' दैनिक में ४ और ५ जून १९८५ को प्रकाशित
Lord Macaulay and Swami Dayanand.	: Dayanandite. Bombay (1973-74)
गणपतिचा शोध	: प्रकाशक नवशक्ति (मराठी दैनिक) २६-९-१९७७
श्री कृष्णावतार	: प्रकाशक : नवशक्ति (मराठी दैनिक) ४ ९-१९७७
जातिगत आरक्षण व्यवस्था कहाँ तक उचित है ?	होस दिगन्त २२-५-१९८५, १२-६-१९८५ तथा विक्रम २३-६-१९८५

यज्ञात शोषणाला स्थान नाही : प्रकाशक : नवशक्ति (मराठी दैनिक) ९-४-१९७८

अनार्य लोग कहाँ से आगये ! : प्रकाशक : जनधारा (हिन्दी मासिक) मई १९७८

राष्ट्र पितामह महर्षि दयानन्द : प्रकाशक : वैदिक गर्जना (पाक्षिक) १५-५-१९७७

वैदिक शिक्षा प्रणाली : „

समान दंड विधि : प्रकाशक : आर्य जगत (हिन्दी साप्ताहिक) और होस दिगन्त (कन्नड दैनिक) विक्रम (कन्नड साप्ताहिक)

राजनीति गंदी नहीं : प्रकाशक : आर्य जगत । (हिन्दी साप्ताहिक)

हमारी उज्वल राजनैतिक परंपरा : „

वेदों में इतिहास : प्रकाशक : नवभारत टाईम्स (हिन्दी दैनिक) पं. वैद्यश्री वासुदेव व्यासजी के साथ, सुदीर्घ शास्त्रार्थ

कुरान-कानून की दृष्टी में : प्रकाशक : वैदिक गर्जना (पाक्षिक) और जनज्ञान, (हिन्दी मासिक) होस दिगन्त (कन्नड दैनिक)

वेश्यावृत्ती को कानूनी मान्यता? : प्रकाशक : सार्वदेशिक साप्ताहिक (२७-२-१९८३)

अनुच्छेद २५ : प्रकाशक : आर्य जगत, वेद प्रकाश और आर्य गजट

फिल्में और मन प्रदूषण की समस्या : प्रकाशक : होस दिगन्त (कन्नड दैनिक)

आगामी प्रकाशन : आर्यसमाजके आन्तरिक और बाह्य शत्रु।

इन के अतिरिक्त होसदिगंत-कन्नड दैनिक (मंगलूर) और विक्रम्, कन्नड साप्ताहिक (बंगलूर) वेदप्रकाश में अक्सर विभिन्न सामयिक विषयों पर श्री वर्मनजी के लेख छपते रहते हैं।

—प्रकाशक

श्री ज्येष्ठ वर्मन्

जन्मः बजपे (मंगळूर, कर्नाटक) में १२ फरवरी १९४०। प्रारम्भिक शिक्षाः हाईस्कूल तक बजपे में, पश्चात् कालेज शिक्षण बम्बई में। १९६५ में संस्कृत व्याकरण शास्त्र और अर्धमागधी से एम. ए.। सन् १९७५ तक बम्बई के. एस्. आई. ई. एस्. कॉलेज, भवन्स कॉलेज और महर्षि दयानंन्द सरस्वती कॉलेज में संस्कृत और अर्धमागधी विभाग में प्राध्यापक की सेवा। इस समय विशेष रूप से वैदिक साहित्य के वैज्ञानिक एवं सेक्यूलर विषयों पर शोधकार्यो के अतिरिक्त आर्य प्रतिनिधि सभा, बम्बई के महामंत्री, वेद प्रकाश (कन्नड मासिक) के संपादक तथा अन्य कई सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं में प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में सेवा कार्यों में रत।